5. विपरीतकरणी मुद्रा के अभ्यास से साधक की जठराग्नि बढ़ जाती है, जिसके कारण योगी में अधिक भोजन पचा सकने की सामर्थ्य हो जाती है। ऐसी अवस्था में योगी को कम आहार नहीं ग्रहण करना चाहिए अन्यथा उसकी जठराग्नि से उसका शरीर नष्ट होने लगेगा।

6. ध्यानबिन्दु उपनिषद्

इस उपनिषद के मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं:

1. ध्यानयोग का महत्व।
2. प्रणव का स्वरूप।
3. प्रणव ध्यान की विधि।
4. योग के छः अंग।
5. नादानुसंधान द्वारा आत्म दर्शन।

1. **ध्यानयोग का महत्वः** जैसा कि इस उपनिषद का नाम ही ध्यान बिंदु उपनिषद् है। अतः इस उपनिषद् का केंद्रीय भाव ध्यान है। इस ध्यानयोग के महत्व को बताते हुए कहा गया हैः

यदि षैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्। भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

ध्यानबिन्दूपनिषद् 1

अर्थात् शैल पर्वत के समान अनेकों जन्म जन्मांतर और अनेक योजन में व्यापक पाप समूह को भी ध्यान योग द्वारा नष्ट किया जा सकता है, जो अन्य किसी साधन से संभव नहीं है। इस प्रकार ध्यानयोग की साधना से कैसे भी और कितने भी पापों को नष्ट किया जा सकता है।

2. **प्रणव का स्वरूप :**

बीजाक्षरं परं बिन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्। सशब्दं चाक्षरे क्षीणं निःशब्दं परमं पदम्।।
अनाहतं तु यच्छब्दं तस्य शब्दस्य यत्परम्। तत्परं विन्दते यस्तु स योगी छिन्नसंशयः।

ध्यानबिन्दूपनिषद् 2–3

अर्थात् बीजाक्षर या ओंकार प्रणव से परे बिन्दु स्थित है और उस बिन्दु पर नाद की स्थिति है। इस नाद से मनोहर ध्वनि सुनाई पड़ती है। नाद ध्वनि के अक्षर में विलय हो जाने पर जो शब्द से रहित जो स्थिति होती है, वही **परमपद** है। जो योगी उस अनाहत तत्व का जो परम कारण तत्व के परे परम कारण स्वरूप उसे प्राप्त करलेता है, उस योगी के सभी संशय नष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्म की सत्ता की सूक्ष्मता का वर्णन करते हुए इस उपनिषद् में कहा गया है कि यदि बाल अर्थात गेहूं की बाली के अग्रभाग के एक लाख भाग किये जाय तो उसका 1 भाग जीव कहलाएगा। जब उसके अर्थात् जीव के भी एक लाख भाग किये जाये तो उसका लाखवें भाग को ईश्वर समझना

चाहिए, तत्पश्चात उसके भी 50 हजार भाग पर जो शेष रहे उसके भी क्षय हो जाने पर जो सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म रहे वही उस निरंजन ब्रह्म की सत्ता है।

जिस प्रकार पुष्प, दूध, तिल आदि में क्रमशः गंध, घृत और तेल प्रत्यक्षरूप से न दिखने पर भी अव्यक्तरूप से विद्यमान रहता है उसी प्रकार सभी प्राणियों में आत्मतत्व का अस्तित्व भी निहित है।

'ऊँ' कार के तीनों वर्णों का विश्लेषण करते हुए इस उपनिषद् में बताया गया है कि प्रणव के प्रथम अंश अकार में पृथ्वी, अग्नि, ऋग्वेद, भूः तथा पितामह ब्रह्म का लय होता है। प्रणव का यह 'अकार' अंश पीतवर्ण युक्त और राजसिक है। प्रणव का दूसरा अंश 'उकार' श्वेत वर्ण और सतोगुण से युक्त है। इस अंश में अंतरिक्ष, यजुर्वेद, वायु, भुवः तथा जनार्दन विष्णु का लय होता है। प्रणव का तृतीय अंश 'मकार' कृष्ण वर्ण एवं तमोगुण से युक्त है। इसमें देव द्यौ, सूर्य, सामवेद, स्वः तथा महेश्वर का लय होता है। इस प्रकार 'ऊँ' कार प्रणव को 8 अंगों चार पैरों, तीन स्थानों और पंच देवों से युक्त बताया गया है।

इस उपनिषद् के अनुसार जो प्रणव ज्ञान के महत्व को बताते हुए कहा गया हैः

ओंकारं योग न जानाति ब्राह्मणो न भवेत्तु सः। प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते।।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं षरवत्तन्मयो भवेत्। निवर्तन्ते क्रियाः सर्वास्तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

ध्यानबिन्दूपनिषद् 14–15

अर्थात् जो ''ऊँकार'' को नहीं जानता उसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। यहां प्रणव, आत्मा और ब्रह्म को धनुष, ब्राण और लक्ष्य की संज्ञा देते हुए कहा गया है कि साधक को बिना प्रमाद किये तन्मयता के साथ लक्ष्य का बेधन करना चाहिए।

इस उपनिषद् के अनुसार सभी स्थावर, जंगम की उत्पत्ति ओंकार से ही हुई है। ओम का ह्रस्व, दीर्घ और अर्द्धमात्रा क्रमशः पापों को दहन करने वाला, अक्षय सम्पदा देने वाला और मोक्ष दायक माना गया है। ऊँकार की महत्ता को बताते हुए कहा गया है कि इसके ह्रलस्व अंश से पापों का दहन, दीर्घ अंश से अमृत स्वरूप अक्षय सम्पदा और अर्ध मात्रा युक्त प्रणव से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

3. प्रणव ध्यान विधिः

हृत्पद्यकर्णिकामध्ये स्थिरदीपनिभाकृतिम्। अंगुष्ठमात्रमचलं ध्यायेदोंकारमीश्वरम्।

ध्यानबिन्दूपनिषद् 19

अर्थात् हृदय कमल की कर्णिका के मध्य स्थिर ज्योति शिखा के समान अंगुष्ठ आकार में 'ऊँ' कार रूपी परमात्मा के ध्यान का परामर्श दिया गया है।

इस उपनिषद् में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को क्रमशः पूरक, कुम्भक और रेचक की संज्ञा देते हुए इन्हें प्राणायाम का देवता कहा गया है। इस उपनिषद् में त्रिगुणात्मक मन को सृजन, पालन और संहार का

कारण माना गया है और जब इस त्रिगुणात्मक मन का विलय हो जाता है तो विष्णु के परमपद की प्राप्ति होती है। पूरक, कुम्भक और रेचक के समय ध्यान को बताते हुए कहा गया हैः–

1. पूरक के समय : नााभिस्थान में चतुर्भुज महाविष्णु का ध्यान।
2. कुम्भक के समय : हृदयस्थल में चतुर्भुज पितामह ब्रह्मा का ध्यान।
3. रेचक के समय : शुद्ध स्फटिक श्वेत रंग के त्रिनेत्र युक्त पाप संहारक भगवान शिव का ध्यान।

यहां अमृत का स्थान बताते हुए कहा गया है कि नासिका के मूल से लेकर भौहों मध्य के स्थान तक अमृत का स्थान मानना चाहिए और यही ब्रह्म का महान निवास स्थान भी हैं।

4. योग के छह अंगः

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा। ध्यानं समाधिरेतानि योगांग्नि भवन्ति षट्।।

ध्यानबिन्दूपनिषद् 41

अतः इस उपषिद् में योग के छः अंग आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि माने गये हैं।

आसन : आसनों की संख्या के विषय में बतलाते हुए उपनिषद् में कहा गया है कि विश्व में जीव प्रचातियों की संख्या के बराबर आसनों की संख्या है और उन असंख्य भेदों के ज्ञाता भगवान शिव ही हैं। इन असंख्य आसनों में मुख्य चार **सिद्धासन, भद्रासन, सिंहासन और पद्मासन** हैं। इस उपनिषद में आसनों की व्याख्या के साथ चक्रों का उद्धरण करते हुए प्रथम चक्र आधार या मूलाधार और दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान बताया गया है। इन दोनों के मध्य कामरूप प्रजनन स्थान है। गुदा स्थान के मूलाधार चक्र में चार दल बतलाए गए हैं, इसके बाद स्थित स्वाधिष्ठान चक्र है। नाभि मंडल में स्थित चक्र को मणिपुर कहां गया है। यह 12 दलों से युक्त है जो पुण्य–पाप को नियंत्रण करने वाला है। अतः इसे महाचक्र भी कहते हैं। मेद्र अर्थात् स्वाधिष्ठान के ऊपर और नाभि के नीचे पक्षी के अंडे के समान कंद का स्थान है और उसी कंद से 72 हजार नाड़ियां उत्पन्न होती हैं, जिनमें 72 प्रमुख हैं। इन 72 हजार नाड़ियों में 10 नड़ियां सबसे प्रमुख है, यथाः इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यषस्विनी, अलम्बुसा, कुहू, तथा शंखिनी।

उपरोक्त नाड़ियों में प्रवाहित होने वाले प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय 10 प्राण हैं। इनमें से प्रथम पाँच मुख्य प्राण और अन्तिम पाँच उपप्राण हैं।

इस प्रकार 72 हजार नड़ियों में प्राण जीव रूप में वास करते हुए प्राण–अपान के वशीभूत होकर ऊपर और नीचे आवागमन करता रहता है। अतः प्राण और अपान ही जीव को आराम की अवस्था में नहीं आने देते। इस उपनिषद में श्वास–प्रश्वास से होने वाली ध्वनि को क्रमशः सकार और हकार से संबोधित करते

हुए कहा गया है कि हकार और सकार अर्थात् 'हंस' मंत्र का जप जीव हमेशा करता रहता है। इस अद्वैत अर्थात हंस मंत्र की संख्या दिन और रात में मिलाकर 21600 होती है। इसे ही अजपा गायत्री के नाम से भी जाना जाता है।

इस उपनिषद के अनुसार अग्नि योग द्वारा परमेश्वरी कुंडली का जागरण होता है। सामान्य दशा में उस पथ को अपने ही मुख से अच्छादित करके कुंडलिनी शक्ति प्रसुप्त अवस्था में रहती है। अग्नियोग से जागृत होने पर यह कुंडलिनी महाशक्ति सुषुम्ना मार्ग से मन और प्राण वायु को उसी प्रकार अपने साथ लेकर उर्ध्व की ओर गमन करते है जैसे सुई धागे को अपने साथ लेकर चलती है। जिस प्रकार संसार में चाभी द्वारा दरवाजे को खोला जाता है, उसी प्रकार योगी कुंडली महाशक्ति द्वारा मोक्ष मार्ग का भेदन करता है।

साधक पद्मासन में बैठकर दोनों हाथों को सम्पुट बनाकर ठोड़ी से वक्ष भाग को दृढ़ता पूर्वक दबाकर चित्त में स्वरूप का ध्यान रखकर बार–बार अपान वायु को ऊपर की ओर चलाएं। इस प्रकार योग साधक अंदर की प्राणवायु को नीचे छोड़ता हुआ अतुलित कुंडलिनी शक्ति सामर्थ का बोध प्राप्त करता है। इस प्रकार पद्मासन में बैठकर नाड़ी द्वार से प्राण वायु को खींचकर जो साधक कुंभक द्वारा उस को रोकता है, वह निश्चित रूप से मोक्ष को प्राप्त करता है। प्राणायाम के अभ्यास के दौरान यदि स्वेद निकले तो योग साधक को उसे शरीर में ही मन लेना चाहिए। इस दौरान साधक को दूध का सेवन और कटु, अम्ल और नमक आदि का परित्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार अल्पाहारी और ब्रह्मचारी योग साधक 1 वर्ष के अंतराल में सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। इसमें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं है।

मूलबंध : एड़ी भाग से योनि स्थान को दबाकर मलद्वार को संकुचित करके अपान वायु को ऊपर की ओर खींचे यह क्रिया मूलबन्ध कहलाती है। इस बन्ध के सतत अभ्यास से प्राण–अपान का एकीकरण होता है और कुंडलिनी की षक्ति से योग साधक को सिद्धि प्राप्त होती है। इस अवधि में मल की मात्रा में क्षीण होने से वृद्ध भी जवान हो जाता है।

उड्डियान बंध : जैसे बिना थके हुए महापंछी उड़ने की क्रिया करता है, उसी प्रकार पेट की मांसपेशियों को पीछे की ओर संकुचित करते हुए नाभि को ऊपर की ओर खींचना चाहिए। इसे ही उड्डियान बंध के नाम से जाना जाता है। इसके अभ्यास से साधक को मृत्यु पर विजय प्राप्त हो जाती है। यह बंध गजराज रूपी मृत्यु के लिए सिंह के समान है।

जालंधर बंधः इस बंध के अभ्यास में कंठ को सिकोड़ने से वायु अवरूद्ध हो जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप अमृत की अग्नि में गिरने की संभावना नहीं रहती। इसके अभ्यास से कर्म बंधन और पाप जनित दुःखों का नाश हो जाता है।

खेचरी मुद्रा : जिह्वा को उलट कर कपाल गुहा में प्रविष्ट करके अपनी दृष्टि को दोनों भौहों के मध्य में स्थिर रखना खेचरी मुद्रा कहलाती है। इस मुद्रा की सिद्धि हो जाने पर निद्रा, भूख, प्यास आदि नहीं सताती। व्याधि और मृत्यु का भी भय नहीं रहता। जो खेचरी मुद्रा को जानता है, वह न तो मूर्छित होता है, न ही रोग उसे कष्ट देते और न ही वह कर्मों में लिप्त होता है। इस मुद्रा से जिस साधक का चित्त आकाश में विचरण करने लगता है और उसकी जिह्वा भी आंतरिक्ष गामिनी हो जाती है, ऐसा साधक काल के बंधन से भी नहीं बधता। इस मुद्रा के अभ्यास द्वारा जो साधक तालु के छिद्र को अवरुद्ध कर देता है, उसके द्वारा स्त्री समागम करने पर भी वीर्य का क्षरण नहीं होता, और जब तक शरीर में वीर्य विद्यमान है तब तक मृत्यु का भी भय नहीं। खेचरी मुद्रा के रहते वीर्य के क्षरण की संभावना नहीं रहती और यदि किसी भी तरह वीर्य स्खलित होकर योनि में गिर भी जाए तो योगी हठ पूर्वक उसे योनि मंडल से पुनः खींच लेते हैं।

यह वीर्य सफेद और रक्त दो वर्णों वाला होता है। सफेद वर्ण वाले को शुक्र और रक्त वर्ण वाले को महाराज कहा जाता है। इन दोनों में रक्त वर्ण रज योनिस्थान में और शुक्ल वीर्य चंद्रस्थान में विद्यमान है। वीर्य को शिवरूप और रज को शक्ति का रूप माना जाता है। अर्थात रज और वीर्य क्रमशः सूर्य और चन्द्रमा हैं। इन दोनों के संयुक्त होने पर परम देह की प्राप्ति होती है। शुक्लवर्ण वीर्य चन्द्रमा से और रज सूर्य से युक्त हैं। इन दोनों की समरसता को जानने वाला योग का ज्ञाता है।

महामुद्राः नाड़ियों में स्थित मल की शुद्धि के लिए सूर्य और चंद्र के संयोगत्व और वात, पित्त, कफ आदि रसों के भली प्रकार शोषण किए जाने को महामुद्रा कहा जाता है। महामुद्रा के अभ्यास में बायीं एड़ी से योनि को और ठोड़ी से वक्षस्थल को दबाकर दाहिने पैर को प्रसारित रखते हुए उसे दोनों हाथों से पकड़कर कुक्षियुगल में ष्वास भरकर कुम्भक करें, तदुपरांत धीरे–धीरे रेचक द्वारा ष्वास को बाहर कर दें। इसे ही योगीजनों ने सर्व पापनाशिनी महामुद्रा कहा है।

आत्मविवेचनः इस उपनिषद् में आत्मा का विवेचन करते हुए कहा गया है : ''हृदि स्थाने अष्टदलपद्मं वर्तते। तन्मध्ये रेखावलयं कृत्वा जीवात्मरूपं ज्योतीरूपमणुमात्रं वर्तते। तस्मिन्सर्वं भवति सर्वं जानाति सर्वं करोति सर्वमेतच्चरितमहं कर्ताऽहं भोक्ता सुखी दुःखी काणः खञ्जो बधिरो मूकः कृषः स्थूलोऽनेन प्रकारेण स्वतन्त्रवादेन वर्तते।'' **ध्यानविन्दु उपनिषद् 93–1**

अर्थात् हृदय स्थल में स्थित अष्टदल कमल है, उसके मध्य में रेखा वलय बनाकर ज्योति एवं अणु स्वरूप में जीवात्मा निवास करता है। वह सब कुछ जानने वाला, सब कुछ करने वाला और सब कुछ उसी में

प्रतिष्ठित है। वह जीवात्मा स्वयं को सभी चरित्रों का कर्ता भोक्ता, सुखी, दुखी, लंगड़ा, काना, गूंगा, बहरा, दुबला, मोटा आदि समझता है।

तीन वलय रेखाएं जिनमें क्रमशः निद्रा, सुषुप्ति और तुरीय अवस्था की प्राप्ति होती है। जीवात्मा का संबंध जब प्रथम वालय रेखा से होता है, तब उसे निद्रा अवस्था की प्राप्ति होती है। निद्रावस्था के बीच में ही स्वप्नावस्था रहती है। जीव जब द्वितीय रेखा वलय में डुबकी लगाता है, तब उसे सुषुप्तावस्था की प्राप्ति होती है। इस अवस्था में बुद्धि मात्र परमेश्वर से संबंध रखने वाली और नित्य स्वरूप का बोध कराने वाली होती है। इसके पश्चात् ही परमात्मा की प्राप्ति सम्भव हैं। तीसरी वलय रेखा का संबंध तुरीयावस्था से है। इस अवस्था में बुद्धि केवल परमात्मा से ही संबंध स्थापित करती है। इस अवस्था में बुद्धि को धीरे–धीरे सब से पृथक करते हुए धैर्य के साथ मन को आत्मा में केंद्रित करना चाहिए। इस समय कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए। इस अवस्था में प्राण–अपान में एकीकरण करते हुए संपूर्ण जगत को आत्म स्वरूप मानते हुए लक्ष्य पर ही ध्यान केंद्रित करना चाहिए। तुरियावस्था की प्राप्ति होते ही द्वन्द्वभाव मिटते है तथा सब कुछ आनंद स्वरूप अनुभव होने लगता है। इसके बाद जीव देह धारण रहने तक ही उसमें निवास करता है और देह की समाप्ति होते ही परमात्म तत्व की प्राप्ति हो जाती है। इसी मार्ग द्वारा मोक्ष और आत्म दर्शन दोनों की प्राप्ति संभव है।

इस प्रकार चार मार्ग से संयुक्त महाद्वार की ओर जाने वाली वायु के साथ स्थिर होने पर ही अर्ध त्रिकोण में परमात्मा का साक्षात्कार होता है। पूर्व में कथित त्रिकोण स्थान पर पृथ्वी आदि पांच रंग वाले तत्व हैं। बीज वर्ण के साथ पंचप्राण ध्यान के योग्य हैं जो इस प्रकार हैंः

1. प्राण बीज मंत्र : 'य'
2. अपान बीज मंत्र : 'र'
3. व्यान बीज मंत्र : 'ल'
4. उदान बीज मंत्र : 'व'
5. सामान बीज मंत्र : 'ह'

इस उपनिषद् में सामान प्राण को 72000 नाड़ियों और शरीर के 28 करोड़ रोम छिद्रों में निवास करने वाले बताया गया है। इस उपनिषद में समान और प्राण दोनों की अभिन्नता स्थापित करते हुए कहा गया है कि दोनों एक ही हैं। चित्त को दृढ़ता से समाहित करके पूरक, कुंभक और रेचक ये तीनों क्रियाएं संपन्न करनी चाहिए। हृदय कमल के कोटर में धीरे–धीरे इन सब को आकर्षित करते हुए प्राण और अपान वायु को अवरुद्ध कर ओमकार अर्थात् प्रणव का उच्चारण करना चाहिए। कंठ और उसके पष्चात् लिंग का संकुचन करें, तत्पश्चात मूलाधार से पदम्तन्तु की भॉति प्रकट होने वाली सुषुम्ना नाड़ी का भी संकुचन

करना चाहिए। यहां पर वीणा दण्ड से उठने वाला अमूर्तनाद सुनाई पड़ता है जैसे षंखनाद आदि से अमूर्त ध्वनि सुनाई पड़ता है। व्योमरन्ध्र से गमन करने वाले नाद जो कि मोर पक्षी के ध्वनि के समान होता है। कपल कुहर के बीच में चार दीवारों से युक्त मध्य का स्थान है। यहीं पर सूर्य से सुशोभित होने के समान आत्मा प्रतिष्ठित है और ब्रह्म प्राप्त के स्थान पर ब्रह्मरन्ध्र में कोदण्ड द्वय के मध्य शक्ति का स्थान है। यहीं पर मन को तल्लीन करके अपने आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करते हैं। उसी स्थान पर रत्नों से ज्योतिष्मान् महेश का स्थान है। जो पुरुष इस तथ्य का ज्ञाता है, वही केवल पद को प्राप्त करता है।

7. नादबिन्दु उपनिषद्

इस उपनिषद का संबंध ऋग्वेद से है। इस उपनिषद में ओमकार को हंस के रूप में प्रतिपादित करते हुए उसके विभिन्न अंगों उपागों का वर्णन किया गया है। उपनिषद् में ''ऊँ'' की 12 मात्राओं का वर्णन उनके प्राणों के विनियोग और उनके फल के साथ किया गया है। इस उपनिषद का प्रतिपाद्य विषय हंसविद्या, ओंकार के विभिन्न अंग और उपांग, ओंकार की 12 मात्राएं और उनके प्राणों के साथ प्रयोग करने का फल, नाद के प्रकार, नादानुसंधान साधना, मन के लय की अवस्था आदि हैं।

हंसविद्या और इसके अंग उपांग : नादबिन्दु उपनिषद् में 'ओमकार' के विभिन्न अंग और उपांगों को हंस के रूप में प्रतिपादित किया गया है। हंस से प्रणव के सम्बंध को बताते हुए कहा गया है कि हंस के दायें पंख, बायें पंख, पूँछ और शीर्ष भाग क्रमशः 'अकार', 'उकार', 'मकार', और अर्धमात्रा हैं। इसी प्रकार ओमकार रूपी हंस का दाहिना पैर रजोगुण, बायाँ पैर तमोगुण, और उसका शरीर सतोगुण है। दाहिना चक्षु धर्म और बायाँ चक्षु अधर्म है। ओमकार रूपी हंस के शरीर में सभी लोकों का वर्णन इस प्रकार किया गया हैः

1. हंस के दोनों पैरों में : भूः लोक (पृथ्वी लोक)
2. हंस की दोनों जंघाओं में : भुवः लोक (आंतरिक्षलोक)
3. हंस के कटिप्रदेष में : स्वः लोक (स्वर्ग या उर्ध्व लोक)
4. हंस के नाभिप्रदेष में : महः लोक
5. हंस के हृदय प्रदेष में : जनः लोक
6. हंस के कंठ प्रदेष में : तपः लोक
7. हंस के ललाट और भौहों के मध्य में : सत्य लोक

प्रथम मात्रा 'अकार' का सम्बंध आग्नेयी से, द्वितीय मात्रा 'उकार' का सम्बंध वायव्या अर्थात् वायु से, तृतीय मात्रा 'मकार' का सम्बंध सूर्य मण्डल और चतुर्थ 'अर्धमात्रा' का सम्बंध वारूणी से हैं।

ओंकार की 12 मात्राएं और उनमें प्राणों के महाप्राण का प्रतिफलः–